श्री अजय जाखड़ और परंजॉय गुहा ठाकुरता के साथ वार्तालाप के दौरान श्री अशोक गुलाटी, अध्यक्ष, कृषि लागत एवं मूल्य आयोग, कृषि मंत्रालय के साथ साक्षात्कार का सार

कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की स्थापना वर्ष 1965 में की गई थी और यह आज क्या कर रहा है। मुख्य प्रश्न हैं – क्या यह एक संवैधानिक निकाय है; क्या इसकी सिफारिशें सरकार मानती है; और ऐसा न करने पर इसके क्या लाभ और हानियां हैं। इस निकाय की स्थापना वर्ष 1965 में न्यूनतम समर्थन मूल्य की सिफारिशें करने के लिए की गई, मैं अधिकतम मूल्य पर बल नहीं देता बल्कि न्यूनतम समर्थन मूल्य पर बल देता हूँ जो किसानों के लिए लाभकारी है ताकि वे नई तकनीक अपना सकें। उस समय भारत में नए बीज आ रहे थे और आशा था कि उत्पादकता बढ़ेगी। खरीद प्रक्रिया न होने पर जब भी उत्पादन बढ़ा मूल्य नीचे गिरते चले गए। उस समय यह डर था कि मूल्य बिल्कुल नीचे चले जाएंगे और अतः नई तकनीक किसानों द्वारा अपनाना लाभकारी न होगा और क्रांति नहीं आ पाएगी।

एक सप्ताह के दौरान में दो निकायों का प्रारंभ वर्ष 1965 में किया गया था पहली निकाय का आरंभ 1 जनवरी और दूसरी निकाय का आरंभ 8 जनवरी से हुआः प्रभावकारी मूल्यों की सिफारिश करने के लिए कृषि मूल्य आयोग और भारतीय खाद्य निगम का आरंभ उत्पादन खरीदने के लिए। इसका परिणाम सभी के सामने है।

अ.गु. – उस समय यह कहा जाता था बाजार से जो भी मिले उसे किसान को ले लेना चाहिए और सरकार उसे एक फ्लोर प्राइस देगी। खरीद मूल्य और न्यूनतम समर्थन मूल्य दो अलग–अलग मूल्य थ्योरी में हैं। सरकार को निजी व्यापारियों से प्रतिस्पर्धा करते हुए खरीदें करनी थी। समय बीतने के साथ–साथ जिन्सों की संख्या बढ़ती गई – अब 25 जिन्सें हैं – जिनके लिए कृषि लागत एवं मूल्य आयोग न्यूनतम समर्थन मूल्य की सिफारिश करता है। अन्य पहलू भी शामिल किए गए हैं। लागत पहलू मुख्य पहलू है (इस कारण कृषि मूल्य आयोग संस्था का नाम बदलकर कृषि लागत एवं मूल्य आयोग कर दिया गया) किंतु एकमात्र इसी से मूल्य निर्धारण नहीं होता। कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की शर्तों के अनुसार 7 या 8 पहलुओं को शामिल किया जाता है।

मुख्य मुद्दे हैं – क्या लाभकारी मूल्य इतने अधिक हैं कि किसान नई तकनीक अपनाने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए तैयार हैं ? यह मुख्य कारण है। दूसरे जिन्स की समग्र मांग और आपूर्ति की स्थिति का ध्यान रखा जाता है। मान लें कि किसी जिन्स की अधिकता है और इसमें लाभ अधिक है तो अधिक उत्पादन के लिए किसान प्रेरित होंगे। इसके पश्चात यदि यह जिन्स निर्यात के योग्य नहीं है तो घरेलू बाजार में जिन्स की अधिकता होगी और माल अधिक इकट्ठा होगा जो आर्थिक रूप से अच्छा नहीं कहा जा सकता। अतः समग्र मांग और आपूर्ति की स्थिति पर विचार करने की आवश्यकता है। तीसरा, व्यापार की शर्त – कृषि और इसके साथ–साथ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में क्या हो रहा है, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा अंतराल मूल्य समानता (इन्टर कॉप प्राइस पेरिटी) जैसे प्रश्नों को देखने की आवश्यकता है।

विशेषज्ञ समिति ने सिफारिश की है कि कृषि लागत एवं मूल्य आयोग को एक सांविधिक निकाय बनाया जाए किंतु सरकार इस पर तैयार नहीं थी क्योंकि यदि ऐसा किया गया तो किसान सरकार को न्यायालय में ले जा

सकते हैं यदि उन्हें घोषित समर्थन मूल्य नहीं दिया गया। इसका अर्थ है विधिक बाधाएं। संभव है सरकार इसे खुला और सिफारिश के रूप में ही रखना चाहती है।

आदेश के अनुसार कृषि लागत एवं मूल्य आयोग से आशा है कि वह ऐसे मूल्य की सिफारिश करे जो किसानों और उपभोक्ताओं के लिए समान रूप से लाभकारी हो। दोहरी भूमिका से कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की जिम्मेवारी भी बढ़ती है वह किसी एक पक्ष के हित की ही न सोचे। यह केवल उत्पादन बढ़ाने या किसानों की आय बढ़ाने के लिए ही नहीं बना है। केवल एकमात्र यही प्रयोजन नहीं है। दोहरी भूमिका से कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की भी जिम्मेवारी अधिक बनती है। अभी कुछ वर्ष पहले तक मंत्रालय का नाम भी कृषि एवं खाद्य मंत्रालय था।

मनरेगा के दो प्रकार के प्रभाव हैं। यह एक तरफ भूमिहीन मजदूरों को या जो कोई भी न्यूनतम मजदूरी करना चाहता है उन्हें न्यूनतम वेतन प्रदान करता है। कुछ सीमा तक यह उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है जो कि अच्छा है किंतु इसका प्रभाव यह है कि कृषि क्षेत्र में मजदूरों की भारी कमी हो रही है। आज किसान यह कहते हैं कि उनकी सबसे बड़ी चिंता मजदूरों का कम होते जाना है।

उड़ीसा में एक वर्ष में ही कृषि वेतन बढ़कर 43 प्रतिशत हो गया है। दूसरी ओर वर्ष 2011 में एक वर्ष के दौरान कृषि वेतन 18 प्रतिशत से 43 प्रतिशत बढ़ा है। क्या केवल एक वर्ष में ही इसकी पूर्ण प्रतिपूर्ति हो सकती है ? नहीं, लागत और प्रत्येक वस्तु पर मूल्य के कारण देश में मुद्रास्फीति और बढमें मुद्रास्फीति और बढ़ सकती है। विकल्प के रूप में कोई इसकी आंशिक प्रतिपूर्ति तो कर सकता है किंतु पर्याप्त नहीं और किसानों को मितव्ययता के लिए कहा जाए और कम लागत पर कार्य करने के लिए कहा जाए।

जब तक कोई खरीद मशीनरी न हो तो न्यूनतम समर्थन मूल्य का कोई औचित्य नहीं है। मैं चाहूंगा कि चाहे जिन्सों की संख्या कम कर दी जाए किंतु पद्धति अधिक कारगर होनी चाहिए। अन्यथा सरकार की अपनी ही मूल्य नीति की विश्वसनीयता समाप्त हो जाएगी, यदि आप न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करते हो और आप न्यूनतम समर्थन मूल्य सुनिश्चित नहीं कर पाते तो खुले बाजार में मूल्य उससे नीचे चले जाएंगे।

इसी संबंध में प्रमुख वाद–विवाद है। पारंपरिक रूप से यह भारतीय खाद्य निगम है; कुछ मामलो में नेफेड़ है; दोबारा भारतीय खाद्य निगम राज्य एजेंसियों की सहायता से कार्य करती है और प्रत्येक राज्य में एजेंसियों का प्रकार अलग हो सकता है और इसके अतिरिक्त यह इस समग्र कार्य का संचालन नहीं कर पाएगी। अब बड़ा प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस कार्य के लिए अन्य किन एजेंसियों को आप आमंत्रित करेंगे। वे खाद्य सहकारी समितियां हो सकती हैं जैसे इफ्को या कुछ गैर–सरकारी संगठनों को खरीद हेतु आमंत्रित किया जाए, यह कार्य सरकार की तरफ से हो और उन्हीं शर्तों एवं निबंधनों पर हो जैसे भारतीय खाद्य निगम को सौंपा गया है ?

यदि भंडारण में पब्लिक प्राइवेट सांझेदारी की अनुमति दी जा सकती है तो खरीद में क्यों नहीं ? भारतीय खाद्य निगम हर स्थान पर नहीं पहुंच सकता और संभव है कि गैर–सरकारी निकाय इस कार्य को अधिक कारगर ढंग से कर सकती हैं। यदि भारतीय खाद्य निगम की लागत 10 आती है, और वे इसे 8 पर कर

सकते हैं तो वे लाभ अर्जित कर सकते हैं और सरकार को परामर्श दे सकते हैं कि सरकार की ओर से कितनी जिन्सें भंडारित हैं और जब आवश्यकता हो माल की सुपुर्दगी कर दी जाए।

खरीद मौसम के दौरान बहुत क्षति होती है। गोदाम रसीद पद्धति के माध्यम से क्षति होना एक प्रकार है। गोदाम रसीद पद्धति के अंतर्गत आप भंडार वहां करते हैं जहां किसान फसल को ला सकते हैं, बेचें नहीं बल्कि भंडारित कर लें और उन्हें 70 प्रतिशत अग्रिम राशि मिल जाती है क्योंकि किसानों को पैसे की आवश्यकता होती है। यदि फसल को कोलाट्रल आधार पर रखकर 70 प्रतिशत राशि अग्रिम प्राप्त होती है और किसान के पास विकल्प होता है कि वह तीन या चार महीने के बाद बाजार में इसकी बिक्री उस समय करे जब इसके मूल्य बढ़ गये हों किंतु भारतीय खाद्य निगम के आश्चर्यजनक खरीद मूल्य के बारे में आपका सुझाव लेना है। किंतु ये लागत और लाभ किसान को ट्रांसफर किए जा सकते थे और उस गेहूँ का भंडारण कर लिया जाए।

जैसे ही कृषि लागत एवं मूल्य आयोग सिफारिशें करे उनका तुरंत प्रचार कर देना चाहिए; यह प्रक्रिया पारदर्शी होनी चाहिए और सार्वजनिक क्षेत्र में होनी चाहिए, किंतु मैं मानता हूं कि पद्धति में बेहतर लोगों से सरकार अलग–अलग राज्यों से टिप्पण्यिों की जांच कराना चाहती है जब तक यह गोपनीयता का खंड लागू न कर दे।

विभिन्न किसान संस्थाओं से कभी–कभी विभिन्न प्रतिक्रियाएं ऐसी प्राप्त होती हैं कि प्रत्येक वस्तु को रिकॉर्ड़ करना और रिपोर्ट के एक भाग के रूप में रखना कठिन हो जाता है, फिर भी यह बहुत बड़ा कार्य है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि किसानों की संस्थाओं के विचारों पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है और मैं उन्हें यहां केवल बात करने के लिए ही आमंत्रित नहीं कर रहा हूं बल्कि आयोग को ही किसानों के बीच में ले जा रहा हूं; केवल 5 किसानों का प्रतिनिधि मंडल ही नहीं मिलेगा बल्कि 100 या 150 किसान देश के विभिन्न स्थानों पर मिलेंगे और उनकी सुनेंगे। यह परिवर्तन मैं करना चाहता हूं।

यह समझ लेना चाहिए कि सिफारिश किए गए मूल्य का आधार लागत ही नहीं हो सकता। लागत एक सेवंदनशील और महत्वपूर्ण पहलू है किंतु मूल्यों की सिफारिश करने में यह एकमात्र नहीं है। यदि केवल मूल्य और लागत पर ही बल दिया गया तो पद्धति में मुख्य अक्षमताएं उभरकर सामने आ जाएंगी। प्रथम हम किस लागत और किसकी लागत के बारे में बात कर रहे हैं ? यहां तक कि राज्यों में भी एक ही जिन्स की लागत अलग–अलग आती है। यदि कोई किसान 600 रू. प्रति क्विंटल की दर से उत्पादन करता है तो दूसरा किसान 1200 रू. प्रति क्विंटल की दर से करता है।

दूसरा जब राज्य की लागतें आती हैं तो हम उन्हें रिपोर्ट करते हैं कि आर्थिक और सांख्यिकी निदेशालय में क्या एक समान पद्धति का फ्रेमवर्क अपनाया जाता है। जो राज्य आंकड़े भेजते हैं उनका मैथड़ अलग होता है। सभी राज्यों में यह एक समान नहीं होता। अतः पद्धतिजनक फ्रेमवर्क में मुख्य विभिन्नताएं होती हैं जिसमें उन लागतों को कोलेट किया जाता है। नहीं, ऐसा नहीं है यह केवल तथ्य है कि प्रत्येक राज्य की विभिन्न पद्धति है और वे समान नहीं है। लागत इकट्ठी करने की एकमात्र समान पद्धति आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय द्वारा अपनाई जाती है और सरकार इस सूचना के एकत्रित करने में लगभग 40 करोड़ रू. का व्यय करती है। किंतु मुझे पिछले दशक का अध्ययन करने के लिए कहा गया हैः कौन सी भिन्नताएं हैं और एक संवेदनशील

विश्लेषण के लिए कहा गया है: यदि अंतर 5 प्रतिशत और 7 प्रतिशत के बीच है तो यह उचित है किंतु यदि भिन्नता 50 प्रतिशत या 100 प्रतिशत है तो उन राज्यों से परामर्श करने की आवश्यकता है और उनकी लागतों पर विस्तृत वार्तालाप की आवश्यकता है।

इस आरक्षित और सौंपे गए क्षेत्रों के संबंध में आपके क्या विचार हैं ? प्रत्येक चीनी मिल को एक विशेष क्षेत्र दिया जाता था जो 40 वर्ष पहले लाइसेंस राज के लिए अच्छा था। मेरा मानना है कि किसानों को इन नीतियों से मुक्त किया जाए और उन्हें अनुमति दी जाए कि वे जिसे चाहें गन्ने की बिक्री करें। किसान को यह अनुमति नहीं होती कि वह जिस किसी को चाहे बिक्री करे और निर्यात के लाभ से भी वंचित होता है जबकि वे विश्व बाजार में एग्सिस्ट करते हैं। क्या आप किसानों पर सीमाएं समाप्त करने के मामले की सिफारिशें करने पर विचार करोगे ?

अ.गु. – आपका मूल बिंदु किसानों से संबंधित है कि उन्हें स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए कि किसे बिक्री करें। किसी फैक्ट्री को स्थापित किया जाता है कि वह वहां की उत्पादनता बढ़ाने में सहायक होगी। किसी व्यक्ति ने उस क्षेत्र में पांच या दस वर्ष के लिए निवेश किया है किंतु उसी के आस–पास तीन किलोमीटर की दूरी पर उसे 50 पैसे अधिक मिलते हैं तो वह फसल को वहां ले जाएगा। इससे कड़ी प्रतिस्पर्धा होगी जिसे नियमित करना होगा ताकि पहली फैक्ट्री को पर्याप्त समय स्थापित होने के लिए मिल सके कि किसानों की उस तक पहुंच हो और इसके पश्चात किसान स्वतंत्र होगा कि जहां वह चाहे इसकी बिक्री कर दे।

अ.जा. – किंतु अब वहां दशकों से फैक्ट्रियां हैं।

अ.गु. – ये मुद्दे काफी गंभीर प्रकृति के हैं और बाधाओं को देखते हुए इनके विश्लेषण की आवश्यकता है, मेरा मुख्य बिंदु यह है कि किसानों द्वारा बिक्री करने की सीमा के लिए न्यूनतम नियंत्रण होना चाहिए। एक किसान बीमार मिल के साथ हमेशा के लिए क्यों बंधा रहे यदि वह मिल बीमार है। इस विचार की भी आवश्यकता है कि जो फैक्ट्री कुछ विशेष समय के लिए उस क्षेत्र में निवेश करने जा रही है चाहे 5, 7 या 10 वर्ष के लिए है, उसका लाभ अवश्य सोचना चाहिए। विशेषज्ञों को इस पर विचार विमर्श करना होगा।

वर्तमान में, सरकार के पास पर्याप्त मात्रा में बफर स्टॉक है; सरकार इस समय बेहतर स्थिति में है और वास्तव में माल के भंडारण की समस्या है। आने वाले मौसम के दौरान भंडारण हेतु स्थान की आवश्यकता होगी। वर्तमान में 100 प्रतिशत से अधिक बफर स्टॉक की आवश्यकता है और 3 मी.टन से लेकर 5 मी.टन गेहूं का निर्यात किया जा सकता है ताकि भंडारण का स्थान उपलब्ध हो सके और सरकार के लिए भी स्थिति सुलभ रहे इसके साथ–साथ किसानों को भी उनकी उपजों का बेहतर मूल्य प्राप्त हो।

सरकार का एक वाणिज्यिक आसूचना विंग होना चाहिए। सरकार को सबसे अधिक फसलों की भविष्यवाणी पर ध्यान देना चाहिए यही एकमात्र महत्वपूर्ण पहलू है।

क्या कृषि लागत एवं मूल्य आयोग कुछ मामलों में उन किसानों को नकद प्रतिपूर्ति की सिफारिश करेगा जिन फसलों को सरकार खरीद नहीं रही है। किसी एक क्षेत्र से सरकार यदि फसल नहीं खरीद पाती, मान लें

राजकोट से, ऐसी स्थिति में क्या सरकार को उन्हें नकद में या किसी अन्य रूप में प्रतिपूर्ति नहीं करनी चाहिए ? ताकि सरकार अपने वादे को पूरा कर सके।

सैद्धांतिक रूप में हां। इसे प्रशासनिक रूप में संचालित करने की चुनौती है और इस दिशा में कार्य यह है कि इलैक्ट्रानिक प्लेटफार्म का उपयोग करते हुए इस उद्देश्य के लिए यूनिक आईडैन्टिफिकेशन प्रोग्राम का कैसे उपयोग किया जाए। मेरा विश्वास है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य का वादा सरकार का वादा है और न्यूनतम समर्थन मूल्य का भुगतान सुनिश्चित करने के लिए एक कारगर मशीनरी होनी चाहिए या किसानों को कैश ट्रांसफर के माध्यम से प्रतिपूर्ति करने की पद्धति होनी चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि आप यू.आइ.डी. योजना के पक्ष में हैं और मानना है कि इससे जन वितरण प्रणाली में अवश्य सुधार होगा।

इन्हें शामिल करने या छोडने जैसी गलतियों को यू.आइ.डी. भी सरलता से सुधार नहीं सकता। यह इन जिन्सों के बाजारों को विकृत होने से बचा सकता है। उदाहरण के लिए जब कोई वास्तविक रूप में गेहूं और चावल का कारोबार करता है और इसे 1 रू. या 2 रू. या 3 रू. पर बेचता है तो वह अव्यवस्था का शिकार हो जाता है क्योंकि बाजार मूल्य ही ऐसा होता है, और आर्थिक लागत 15 रू. या 20 रू. होती है और गेहूं या चावल 2 रू. की दर से बेचा जाता है। इसके पश्चात वही ट्रक जनवितरण पद्धति के लिए जा सकता है और वापिस खरीद केंद्र पर आ सकता है और वहां 12 रू. की दर होती है या जो कुछ भी निर्धारित किया जा सके। इस प्रकार बाजार विकृत हो जाते हैं। तत्पश्चात 70 मिलियन टन या 80 मिलियन टन का वास्तविक संचालन करना होता है यदि आप उसी रूट के द्वारा जाएं। यह जांच की गई है कि विश्व के विभिन्न देशों में यह पद्धति किस प्रकार संचालित होती है। विश्व में कहीं भी इतनी बडी मात्रा में जन वितरण पद्धति को वास्तविक संचालन देखने को नहीं मिलता है, यहां तक की चीन में भी नहीं। विश्व में इस वास्तविक संचालन की पद्धति को समाप्त कर दिया गया है और यह आज से नहीं बल्कि 10, 15 और 20 वर्ष पहले ऐसा हो चुका है और वे सभी जन वितरण पद्धति में कमी करने के पक्ष में हैं और कैश ट्रांसफर की ओर उनका रूझान है। वे सभी लगभग इन सभी देशों में विद्यमान हैं लेकिन समय बीतने के साथ–साथ उन्होंने इसमें छटांई की और वे कैश ट्रांसफर की ओर जा चुके हैं। इसका कारण यह है कि इससे जिंसों की व्यापक रेंज मिल जाती है और वे विविधीकरण प्रक्रिया के साथ हस्तक्षेप नहीं करते। आप यही क्यों चाहते हैं कि लोग केवल गेहूं और चावल ही खाएं ? वे अंडे क्यों नहीं खरीद सकते। वे खाद्य तेल, दालें, अनाज, दूध और कुछ भी खरीद सकते हैं। अतः उन्हें 15 खाद्य जिंसें लेने दीजिए और इससे उनका काम चल जाएगा। आज आधुनिक तकनीक से आप एक चिप के साथ स्मार्ट कार्ड ले सकते हैं जिसे आप स्वाइप कर सकते हैं और उसके पश्चात आटोमेटिकली एडजस्ट करा सकते हैं। इस तकनीक में भारत नया है और इसे चाहिए कि वह विश्व को दिखाए कि ये लीकेज कैसे कम की जा सकती है चाहे इसे समाप्त न किया जा सकता हो। कोई भी पद्धति परफैक्ट नहीं हो सकती किंतु आज लगभग 60 प्रतिशत या 70 प्रतिशत के लगभग लीकेज है। यदि इसे 10 प्रतिशत या 15 प्रतिशत कम कर दिया जाऐ तो यह बहुत संतोषजनक होगा।

आहार अधिकार एक अच्छा विकास है। लाभकारी मूल्य अधिकार के बारे में आपका क्या विचार है।

मैं जानता हूं कि कोई सिस्टम परफैक्ट नहीं है। पूरे विश्व में राज्य प्रधान पद्धति के दोष हैं और हम 20 वर्ष पीछे के वातावरण में जा चुके हैं और हमें आवश्यकता है कि बाजार अगुवाई पद्धति अपनाएं। जो ये मानते हैं कि बाजार अगुवाई पद्धति परफैक्ट है वे सपने में जी रहे हैं। पिछले दो तीन वर्षों में मॉर्केट ने शॉक दिए हैं किंतु फिर भी यह राज्य प्रधान पद्धति से बेहतर है। ऑप्टिमल कॉम्बिनेशन की आवश्यकता है या लगभग बाजार का 70 प्रतिशत और राज्य का 30 प्रतिशत प्रभावकारी है। यह मोटे तौर पर मेरे विश्व में 30 वर्षों के अनुभव के आधार पर है।

सार्वभौमिक जन वितरण पद्धति के बारे में क्या विचार है ?

सार्वभौमिक जन वितरण पद्धति के लिए मार्केट का 80 प्रतिशत टेकओवर करने की आवश्यकता है, इसका अर्थ है कि खुले बाजार का भाग केवल 20 प्रतिशत होगा। 80 प्रतिशत खरीदना या जो भी उपलब्ध है उसे खरीदना व्यवहारिक नहीं है न ही यह कुशलता की निशानी होगा। प्रयोजन गरीबों को बचाना है और सभी इस बात से सहमत हैं। मैं दूरस्थ क्षेत्रों में कैश ट्रांसफर के द्वारा 70 प्रतिशत तक रखना पसंद करूंगा जहां पर तकनीक कार्य नहीं कर सकती और अन्य स्थानों पर यहां पर वस्तुओं की लक्षित डिलिवरी अन्य क्षेत्र के अलावा होती है। इससे लोगों को चयन करने में स्वतंत्रता मिलेगी कि वे कहां से खरीदना चाहते हैं और केवल सरकारी दुकानों पर ही खरीद न करें। यदि वे चाहें तो वे किशोर बियानी की दुकान पर जा सकते हैं। यही विचार हैः उपभोक्ताओं को वही पद्धति उपलब्ध कराई जाए जो वे चाहते हैं।